प्रवचन-१८, गाथा-११-१२, श्लोक-१८, गुरुवार, फाल्गुन कृष्ण ६, दिनांक १८-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार। कैसा जीव स्वभाव है? और उस स्वभाव का ध्यान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, इसलिए जीव अधिकार में यह लिया है। कैसे जीव का ध्यान करने से, कैसे जीव का ज्ञान करने से या कैसे जीव में रमणता करने से आत्मा को धर्म और मुक्ति होती है? अन्तिम पैराग्राफ है। २९पृष्ठ, अन्तिम है न?

यह आत्मा, अन्दर आत्मा है, वह कैसा है? कि **इस सहजचिद्विलासरूप...** आत्मा स्वाभाविक ज्ञान का विलास है। आहा..हा..! त्रिकाल आत्मा वस्तु, वह स्वाभाविक ज्ञान के विलासरूप अनन्त चतुष्टयसहित ऐसा आत्मा है, उसे भाना, अनुभव करना - ऐसा कहते हैं। स्वाभाविक ज्ञानविलासरूप आत्मा, वह तो ज्ञान के विलासरूप आत्मा है। उसमें कोई शरीर-वाणी-मन या पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-विकल्प उसमें है नहीं। समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान के विलासरूप है।

अब उसमें चार बोल वर्णन करते हैं। स्वाभाविक ज्ञानविलासरूप आत्मा ध्रुव, वह

सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,... रूप है। कैसा है? भगवान आत्मा? सदा—त्रिकाल, स्वाभाविक परम वीतराग सुख का अमृतरूप है वह। सदा—तीनों काल। श्रद्धा में वहाँ त्रिकाल लिया है। इसमें सदा लिया है। टीका में इतना शब्दफेर किया है।

क्या कहते हैं? मूल बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव, वीतराग परमात्मा ने, यह मोक्ष का मार्ग कैसे हो? वह जाना, वैसा उन्होंने कहा। पृष्ठ २९, अन्तिम पैराग्राफ है। है, यहाँ दूसरी बहुत पुस्तकें हैं। मक्खन की बात है पूरी। जिसे धर्म हो और मुक्ति हो, वह कैसे होती है? यह बात करते हैं। अन्दर भगवान आत्मा ध्रुव नित्य सहजज्ञान विलासरूपी प्रभु नित्य है। **सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** रूप। अन्तर वस्तु का स्वभाव, अनन्त चतुष्टय में का एक स्वाभाविक परमवीतराग सुखामृत, वीतरागी आनन्द के अमृतस्वरूप आत्मा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आनन्द अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृत आनन्द-सुख। आनन्द कहो या सुख कहो।

मुमुक्षु : वीतरागी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागी—रागरहित। यह तुम्हारा बाहर का धूल का माना हुआ (अर्थात्) पैसे में सुख है और धूल में सुख है, स्त्री में सुख है, वह तो राग का-जहर का सुख है। इसके लिए वीतरागी सुख कहा। समझ में आया? यह रागवाला माना हुआ है अज्ञानी ने मूढ़ (ने)। पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में, धूल में, धमाल में, पाँच-पचास लाख हुए और सुखी हैं। मूढ़ है।

मुमुक्षु : उसमें उसे मूढ़ नहीं कहा जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ नहीं। वह तो महा जहर का प्याला पीता है। ऐई! आहा..हा..! कहते हैं कि पैसा, स्त्री का शरीर, इज्जत, पच्चीस लाख रुपये के बड़े मकान, उन पर लक्ष्य जाता है, वह दु:ख का, आकुलता का जहर है। आहा..हा...! वह जहर का, राग का अनुभव है। इसलिए कहते हैं कि आत्मा में तीनों काल स्वाभाविक परमवीतराग सुख का, अमृत का पिण्ड वह प्रभु है। आहा..हा..! समझ में आया?

यह शरीर मिट्टी है, यह तो मिट्टीरूप से रहा है। अन्दर में कर्म हैं, वे कर्मरूप से, अजीवरूप से रहे हैं। अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प / भाव हैं, वे विकाररूप से रहे हैं।

एक समय की अवस्था, वह समयरूप से रही है—एक समयरूप से रही है। त्रिकाल आत्मा जो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर तीर्थंकर ने देखा, वह आत्मा सहज ज्ञानविलासरूपी प्रभु अन्दर है। आहा..हा..! **सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** स्वरूप है। उसकी शक्ति सुखामृत है। वीतराग अमृतस्वरूप वह आत्मा है। आहा..हा..!

(२) वह तो अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,... है। चिद्-ज्ञानविलासरूप से तो कहा परन्तु तत्पश्चात् यह कहते हैं, वह अपना स्वरूप अन्दर अप्रतिहत—कभी नाश न हो, आवरण नहीं, ऐसा ज्ञानस्वरूप। ऐसा चित्‌शक्तिरूप, ज्ञानशक्तिरूप आत्मा है। अभी आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो, (ऐसा नहीं हो सकता)।

मुमुक्षु : किस प्रकार से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करे, इसलिए हो जाये ? व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, अपवास करे। धूल में भी धर्म नहीं है। सुन न। अभी धर्म कैसे हो ? कहाँ से हो ? करनेवाला कौन है ? इसकी खबर बिना धर्म कहाँ से आयेगा ? समझ में आया ?

कहते हैं कि **अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,...** भाषा देखो न! इन्हें कम पड़ती है। उसमें **सहज परमवीतराग सुखामृत,...** (कहा)। अप्रतिहत—आत्मा में घात न हो ऐसा, गिरे नहीं, ऐसा स्वाभाविक आवरणरहित परमज्ञानस्वरूप आत्मा अन्दर है। अनन्त चतुष्टय में का यह दूसरा बोल (चलता है)। पहला बोल वीतरागस्वभावी परमसुखामृत, यह पहला। अनन्त चतुष्टय आत्मा में त्रिकाल है, उसमें यह पहला बोल। दूसरा बोल यह परमचित्शक्तिरूप। आहा..हा..!

तीसरा बोल—**सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र,...** आत्मा में अनादि-अनन्त। इसमें भी सदा शब्द प्रयोग किया है न, देखो! **अन्तर्मुख ऐसा...** अन्दर अन्तर्मुखस्वरूप है। यहाँ पर्याय की बात नहीं है, अवस्था की बात नहीं है। त्रिकाल आत्मा में **अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल...** स्वरूप ज्ञानानन्द में अविचल—चलित नहीं ऐसा, **स्थितिरूप...** स्थिररूप, **सहज परमचारित्र,...** वह आत्मा में अनादि-अनन्त पड़ा है, यह चारित्र अन्दर की व्याख्या हुई। प्रगट चारित्रपर्याय की बाद में। यह तो अन्तरस्वरूप में यह आत्मपदार्थ जो वस्तु है, वह ज्ञानविलासरूपी प्रभु है, उसमें

अनन्त चतुष्टय में के चार बोल हैं। उनमें पहला तो **वीतराग सुखामृत,... अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,...** और **अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र,...** शान्ति वीतरागता आत्मा में त्रिकाल पड़ी है। उसे यहाँ चारित्र कहने में आता है। आहा..हा..! गजब बात, भाई! **परमचारित्र,...** है न? अब चौथा बोल। पहले दो में सदा शब्द प्रयोग किया था। एक में सदा का अर्थ अप्रतिहत प्रयोग किया था। वापस गिरे नहीं, इसलिए वही ऐसा का ऐसा है सदा। यहाँ अब श्रद्धा का वर्णन करते हैं। त्रिकाली श्रद्धा, हों! प्रगट समकित पर्याय की बात नहीं है।

(४) त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट).... ऐसा भगवान आत्मा ने तीनों काल टूटे नहीं, छिदे नहीं, एकरूप रहे, ऐसा **होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** सदा निकट। वह श्रद्धा आत्मा में अनादि-अनन्त पड़ी है। आहा..हा..! समझ में आया? आत्मा कैसा, इसने सुना नहीं और ऐसे के ऐसे धर्म हो जाये... इस खबर बिना सब प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये। क्या होगा? पोपटभाई! यही किया था? धूल में भी धर्म नहीं, तुझे अभी आत्मा कौन है? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने केवलज्ञान में प्रत्येक का ऐसा आत्मा देखा है। समझ में आया?

ऐसा जो **(अटूट) होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** प्रगट श्रद्धा होना, वह नहीं। अन्दर में चिद्विलासरूपी प्रभु, गुण ध्रुव में यह सुख, उसमें यह ज्ञान, उसमें यह चारित्र, उसमें यह श्रद्धा, वह त्रिकाल अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप-स्वभावरूप-गुणरूप पड़े हैं। समझ में आया? उसके खजाने में यह चीज़ पड़ी है। आहा..हा..! पण्डितजी! गजब बात, भाई! **ऐसी परम चैतन्यरूप की...** देखो! परम शब्द तो सबको प्रयोग किया है। **परम चैतन्यरूप की...** श्रद्धा पारिणामिकभाव से। आत्मवस्तु में स्वभावभाव से रही हुई श्रद्धा। अटूट, निकट। जेठाभाई! ऐसा सब कहीं सुना था?

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ सुने?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? मेहनत तो बहुत की थी। गर्म पानी पीना और..., अरे! क्या कहलाता है वह? ....रखना। ऊपर शत्रुंजय चढ़ना थैली में फूल लेकर जाये, ऐसे गिरने न दे, वह सब क्रियाएँ तो पर हैं। उनमें कदाचित् राग की मन्दता का भाव हो तो वह पुण्य घोर संसार का कारण है। ऐसा कहेंगे अभी, हों! भाई! अरे! गजब बात, भाई! कठोर

वीतरागमार्ग जगत को सुनना कठिन पड़ता है। सेठी! यह प्रभु अन्दर विराजता है, ऐसा कहते हैं। तेरे अन्तर खजाने में ज्ञानविलासरूपी प्रभु तू, उसमें अमृत सुख, ज्ञान, चारित्र और श्रद्धा। इसके फिर विशेषण सब दिये। वह अनंत चतुष्टय स्वभाव ध्रुव, आत्मा के नित्य स्वभाव में वे ध्रुवरूप से पड़े हैं।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की सम्पत्ति है। धूल में भी नहीं, यह मेरे पैसे और यह...। पोपटभाई! तुम्हारे पैसेवालों को बाहर में सामने कुर्सी मिलती है।

मुमुक्षु : यहाँ भी मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी मिलती है परन्तु.... यहाँ जमीन ली है, देखो न! छत्तीस हजार की ली है। अब फिर उसमें बंगला बनायेंगे न! जमीन अकेली छत्तीस हजार की ली है। ऐ चिमनभाई! तुम्हारे समधी होते हैं न? उस धूल में बाहर में पच्चीस-पचास लाख हो, करोड़-दो करोड़ हो वहाँ तो मानो.... आहा..हा..!

मुमुक्षु : उन्हें फिर कहाँ डालना, उसकी चिन्ता खड़ी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्ता, आकुलता दाह है। आहा..हा..! यह पहले करने का भाव, वह दाह-अग्नि। रखने का भाव, वह अग्नि; बनाये रखने का भाव, वह अग्नि; यह खर्च करने का भाव, वह अग्नि है। इस धर्म के नाम से खर्च करे तो भी वह कषाय का शुभभाव अग्नि है। राग है न। आहा..हा..! गजब काम भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ, तीर्थंकर का (मार्ग है) यह कोई ऐरे-गैरे, पामर माने, वह मार्ग नहीं है। समझ में आया? प्रकाशदासजी! आहा..हा..! प्रकाशदास, प्रकाश का स्वामी होगा। प्रकाश का स्वामी होना, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा..!

चैतन्यविलास भगवान। पद्मप्रभमलधारिदेव की भाषा देखो न कितनी संक्षिप्त पड़ती है उन्हें। सहज चिद्विलासरूप से। स्वाभाविक ज्ञान के विलासस्वरूप प्रभु तू है, ऐसा कहते हैं। तेरा विलास तो तेरे स्वभाव में है। आहा..हा..! इस धूल में स्त्री, पुत्र और पैसा, बँगले में तेरा विलास नहीं है, भगवान! वह तो सब जहर का प्याला पिया जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, कान्तिभाई!

ओहो..! **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से...** वह स्वभाव अनन्त चतुष्टय-चार हुए

न ? पहला बोल तो स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपी, ऐसा मुख्य लिया क्योंकि ज्ञायकरूप से लेना है न ? ज्ञायकभाव भगवान आत्मा। ज्ञानविलासरूप से प्रभु अनन्त चतुष्टय से सहित विराजमान प्रभु ध्रुव है। कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें ?

मुमुक्षु : न समझ में आये तो अभी समझा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठी ठीक रखता है। कौन समझा दे ?

यहाँ कहते हैं **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है...** भगवान आत्मा सनाथ है। किससे ? चिद्विलासरूप से अनन्त चतुष्टयसहित होने से वह आत्मा सनार्थ है; अनाथ नहीं, सनाथ है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : वह है, इसलिए सनाथ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सनाथ है। आहा..हा.. ! भगवान आत्मा नित्य ध्रुव। एक समय की पर्याय की बात नहीं, पुण्य-पाप की तो बात भी यहाँ नहीं। वह तो सब संसार है, जिसे धर्म करना है, उसे ऐसे आत्मा को अन्तर में रहकर भाना, उसका नाम धर्म है। अभी आता है, हों ! धीरे-धीरे।

ऐसा जो सनाथ आत्मा, **ऐसे आत्मा को,...** ऐसे आत्मा को, ऐसे आत्मा को **अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को...** मुक्तिसुन्दरी अनाथ है, उसका यह आत्मा नाथ है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! **भाना चाहिए...** जिसे मुक्ति चाहिए हो, उसे ऐसे आत्मा की एकाग्रता करना, ऐसे आत्मा का अनुभव करना तो उसे मोक्ष मिले; नहीं तो मोक्ष मिलेगा नहीं। देखो तो सही ! समझ में आया ? आहा..हा.. !

जिसके ध्येय में धर्मी की दशा की पर्याय का ध्येय, वह पूरा आत्मा ऐसा चिद्विलासरूप और अनन्त चतुष्टय शक्ति-स्वभावस्वरूप है। उसके सन्मुख होकर, संयोगी चीज़ों से विमुख होकर, दया, दान के विकल्प से भी विमुख होकर, एक समय की अवस्था में अनादि से रुका हुआ है, उससे विमुख होकर (स्वभावसन्मुख होना)। समझ में आया ? अरे ! गजब बात भाई ! ऐसी।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय से विमुख होकर अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय तो अनादि मानी हुई है। मैं त्रिकाल ध्रुव

हूँ, ऐसा इसने कभी माना नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? अब आत्मा ऐसा कठिन पड़े। ऐई! पारसमलजी! अब इसमें क्या संग्रहना? ले जाना क्या इसमें? वे पैसे हों तो खबर पड़े कि लो, यह बीस लाख, पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हुए। लाओ मारवाड़ में ले जायें। इसमें (क्या ले जाये)? कहते हैं कि यह बात अन्दर ले जाने जैसी है। आहा..हा..! परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में दिव्यध्वनि द्वारा कही हुई बात सन्त कहते हैं। यह टीका गणधरों से रचित है। भगवान के पास सुना हुआ है। यह गणधरों से रचित यह टीका पद्मप्रभमलधारिदेव करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। दूसरी कोई चीज़ ही नहीं। महेन्द्रभाई को वहाँ पैसा-वैसा जरा भी साथ आनेवाला नहीं है। वे इसके नहीं कि साथ आवे। एक पर्याय भी इसके साथ नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। एक समय रहेगी। यह तो त्रिकाल साथ में रहेगा। देखो न! सनाथ है इसलिए। समझ में आया? आहा..हा..! गजब बातें, भाई! अरे! ऐसी मनुष्य देह मिली, उसमें वास्तविक तत्त्व की दृष्टि को नहीं समझे (तो) सबके वृथा अवतार हैं। चाहे तो साधु होकर क्रियाकाण्ड करके मर जाये। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा अनन्त चिद्विलासरूपी प्रभु, अनन्त चतुष्टय के स्वभाव का सनाथ-नाथ प्रभु है, उसे दृष्टि में लेकर उसका अनुभव करना, बस, यही धर्म है; बाकी सब बातें हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

भाना चाहिए.... अर्थात् स्पष्टीकरण किया है। पहला शब्द चिद्विलास है न? शुरुआत में पहला शब्द है। स्वाभाविक ज्ञानविलास। वहाँ चित् शब्द है, यहाँ ज्ञान (शब्द) प्रयोग किया है। चतुष्टय के साथ दोनों का मेल किया है। **सहजज्ञान-विलासरूप से स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त...** स्वाभाविक ज्ञान-विलासरूप से भगवान आत्मा **स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त आत्मा को भाना चाहिए...** ऐसे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता करना चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे अन्तर में (भाना चाहिए)। देखो! यह भाने की व्याख्या। वे विरोध करते हैं। अभी आया था कि भाना अर्थात् ऐसे हो। चिन्तवना, अमुक-अमुक। अरे! भगवान! क्या करता है? प्रभु! तुझे तेरा माहात्म्य नहीं आता।

मुमुक्षु : विधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : विधि यह है। यह तो दूसरी भाषा है। भाना चाहिए, इसमें विवाद उठा है। भाना अर्थात् कल्पना से चिन्तवन करना। ऐसा नहीं है। पाठ है देखो न!

'अनाथमुक्तिसुन्दरीनाथम् आत्मानं भावयेत्।' ऐसे भगवान आत्मा में एकाग्र होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और धर्म है। यह धर्म है। वह धर्मी ऐसा अनन्त चतुष्टययुक्त प्रभु आत्मा के सन्मुख होकर, एकाग्रता से उसमें से दशा प्रगट हो, उसे धर्म कहते हैं। उसे वीतरागमार्ग का धर्म कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..! पुस्तक है या नहीं? भाई! तुम्हारा नाम क्या है? सोहनलालजी? यह तो सोहनलाल आत्मा है, यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा..!

कहते हैं, (यह तो) परमात्मा का हुकम है। सन्त बीच में आड़तिया होकर जगत को समझाते हैं। समझ में आया? आहा..हा..! भाई! तुझे माल चाहिए है? धर्मरूपी माल चाहिए है? वह माल आत्मा के स्वभाव में पड़ा है, वहाँ से माल आयेगा। अन्यत्र से कहीं माल आवे, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

इस प्रकार संसाररूपी लता का मूल... संसाररूपी लता / बेल। आकुलता और दुःख की बड़ी बेल अनादि की है, उसे **मूल छेदने के लिए हँसियारूप इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया।** (उपन्यास अर्थात्) ***कथन, सूचन, लेख, प्रारम्भिक कथन, प्रस्तावना।*** इस प्रस्तावना से ब्रह्मोपदेश (कहा है)। भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु! ब्रह्म, आनन्द। ब्रह्म अर्थात् आनन्द का स्वरूप भगवान आत्मा का है। अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। उसकी यह प्रस्तावना का कथन शुरुआत में किया है। आहा..हा..! समझ में आया?

श्लोक-१८

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं—]

(मालिनी)

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा,
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति।।१८।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार जो कहा गया, वह भेदज्ञान को उर में धार।
सुकृत-दुष्कृत या सुख-दुःख का, करते भव्य जीव परिहार॥
ये समस्त शुभ-अशुभ भाव ही, भव-दुःख के हैं कारण मूल।
इन्हें त्याग कर जीव प्राप्त करता है शाश्वत सुख सम्पूर्ण॥१८॥

श्लोकार्थ :— इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत[१] या दुष्कृत को, सुख या दुःख को अत्यन्त परिहरो। उससे ऊपर (अर्थात्, उसे पार कर लेने पर), जीव समग्र (परिपूर्ण) शाश्वतसुख को प्राप्त करता है॥१८।।

श्लोक-१८ पर प्रवचन

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहतेहैं—] पाँच श्लोक। दो गाथा के पाँच श्लोक। १८वाँ है न ? ऊपर १८वाँ श्लोक है।

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।

१. सुकृत या दुष्कृत=शुभ या अशुभ।

उन लोगों को यह नहीं रुचता, हों! भाई! शुभभाव घोर संसार का मूल.. अर..र..! ऐ..! घोर संसार। भाई! वह शुभभाव है न, पुण्यभाव, भगवान की भक्ति, नाम स्मरण, दया, दान, व्रत, तप—ऐसा जो शुभभाव, कहते हैं कि वह घोर संसार मूल है।

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा,
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति।।१८।।

इस प्रकार कहे गये... अर्थ है न नीचे? नीचे अर्थ है। **भेदज्ञान को पाकर,...** देखो! क्या कहा? **इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,...** अर्थात् द्रव्यस्वभाव ऐसा है और पर्याय से भी वह भिन्न है, राग से भिन्न है—ऐसे इस प्रकार से भेदज्ञान को पाकर, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,...** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप से चिद्विलासरूप से चारित्र की अविचल स्थितिरूप से और अनादि-अटूट श्रद्धारूप से और ज्ञानरूप से जो पड़ा है, पर से उसका भेद भाना चाहिए। आहा..हा..! पर से उसे भिन्न करके **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव...** भव्यजीव। यह तेरा तेरा-तिरने का अभिलाषी जीव-तेरा जीव इस प्रकार से तिर जाता है, ऐसा कहते हैं। यह सूक्ष्म तो आया, नवलचन्द्रभाई! भाई को अभी पहला-पहला है न इसलिए। परन्तु अब सुने तो सही यहाँ कलकत्ता से आकर। मार्ग ऐसा है, बापू! ऐसा सूक्ष्म मार्ग। बाहर में कहीं नहीं है। तब ऐसा लगे कि यह क्या होगा? आहा..हा..!

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा हुकम फरमाते हैं, भाई! तेरा चिद्विलास स्वरूप भगवान अनन्त-अनन्त सुखामृतस्वरूप, अनन्त-अनन्त चिद्स्वरूप, अनन्त-अनन्त अविचल चारित्रस्वरूप त्रिकाल और अनन्त बेहद अटूट अनादि-अनन्त ऐसी निकट स्वभाव में रही हुई श्रद्धा, ऐसे आत्मा को, पर से भेद करके **भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत या दुष्कृत को,...** देखो! है? नीचे है। ***सुकृत या दुष्कृत=शुभ या अशुभ*** भाव। शुभ और अशुभभाव वह विकार है। आत्मा स्वभावस्वरूप है और यह पुण्य-पाप के भाव विभाव दुःखरूप हैं। आत्मा के अमृतस्वरूप से विरुद्धभाव हैं। जब भगवान आत्मा संसार के अभाव-स्वभाव करनेवाला है, तब पुण्य-पाप संसार करनेवाला है, ऐसा

कहते हैं। आहा..हा..! कठिन बात है। जगत को यह जँचना कठिन (पड़ता है)। ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़ का है, परन्तु यह शास्त्र कहता है या क्या कहते हैं यह? सोनगढ़ का कहाँ आया? यह सोनगढ़ की पुस्तक है?

मुमुक्षु : सबको तकलीफ पड़ती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार कहते हैं, वह तो दूसरे प्रकार से कहते हैं। यहाँ का विरोध करने के लिये कहते हैं। आत्मा है, भाई!

मुमुक्षु : यह सोनगढ़ सोना का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी राजकोटवाले आये थे न, भाई। गये? कलकत्ता। गये, वे बेचारे कहते थे। सोनगढ़ अर्थात् पाखण्ड। पाखण्ड.. पाखण्ड। अरे! भगवान! बापू! यह शास्त्र क्या कहता है? किसके घर का शास्त्र है यह?

मुमुक्षु : भगवान के घर का।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्लोक किसका है? नौ सौ वर्ष पहले का श्लोक है। दो हजार वर्ष पहले का मूल श्लोक (गाथाएँ) हैं। प्रकाशदासजी! आहा..हा..!

मुमुक्षु : घोर संसार का....

पूज्य गुरुदेवश्री : सात-आठ जगह है। पुरानी प्रति में लिखा है। ....पुरानी प्रति में लिखा है। यह तो नयी आयी है। पृष्ठ ३० में घोर संसार आया। पृष्ठ ९० में है दुष्ट पाप मूल। पृष्ठ ९०। पृष्ठ १९६, वहाँ दुष्पाप मूल है। पृष्ठ २३६, अघ-पाप तथा पुण्य दोनों अघ हैं। अघ। २७६, अघ पाप तथा पुण्य। पृष्ठ २७६, पृष्ठ २५७ अघ-पाप। पृष्ठ २८६-दुरित। पाप तथा पुण्य दुरित है और पृष्ठ २९३-दुरघ- दु अघ—महापाप, पुण्य और पाप दोनों। पृष्ठ २९९ - अन्धकूप और २११ घोर संसार का मूल पाप है। यह पहले थे न, उसमें से लिखा है। उसका कुछ नहीं, अपने इस एक जगह हो, वहाँ सब समान है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : समयसार में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं नियमसार। इस नियमसार में, यह तो नयी पुस्तक है न! पहले पढ़ते थे, उसमें लिख लिया था। पहले वह पढ़ते थे। अभी यह और अच्छा गत्ता

-बत्ता अच्छा हो, इसलिए लोगों को अच्छा लगे। ऐसा रखे। वह सब साधारण लगता है। समझ में आया? उसमें कहीं सबमें कितना लिखने को निवृत्त हो। चन्दुभाई थोड़ा सुधारकर लिखे। आहा..हा..!

कहते हैं... ओहो..हो..! सन्तों की वाणी तो देखो! पंच महाव्रत धारक ऐसे विकल्प से व्यवहार से है। वस्तु की निर्मल धारा को धरनेवाले हैं। वह महाव्रत है। स्वरूप में लिपट गये, आनन्दघन में लिपट गये, ऐसे सन्त जंगल में बसते हैं। उन्हें वस्त्र-पात्र नहीं होते, उन्हें वीतराग शासन में सन्त-मुनि कहा जाता है। उन मुनि के यह वाक्य हैं। इतना यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं, **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप...** वापस भाषा घोर संसार का मूल (ली है)। ऐई! उसको भट्टी-बट्टी कठिन लगे तो यहाँ तो घोर संसार का मूल कहा है, लो! भाई! वह भट्टी-कही है न शुभ में? भयंकर भट्टी? हाँ, भयंकर भट्टी। भाई में आता है। सोगानी में (सोगानीजी के द्रव्यदृष्टि प्रकाश में) ३१२ प्रश्न। ६४५ में से ३१२वाँ प्रश्न है, उसमें आता है। शुभभाव क्या कहा? शुभभाव भयंकर। आहा..हा..! भयंकर का अर्थ भय को करनेवाला, दु:ख को करनेवाला। उसमें तुझे आपत्ति क्या है? ऐई! वे सब आ गये हैं। दो व्यक्ति (आये थे)। तुम नहीं थे। लालचन्दजी और सुमेरु सेठिया की ओर से। हमारी नजर में दोनों इकट्ठे हों तो यह बात सिद्ध हो ऐसी है। इसके बिना यह बात समझ में नहीं आती। अथवा वहाँ जयपुर आवे और अथवा जयपुर से मैं वहाँ आऊँ। परन्तु दो घण्टे इकट्ठे हुए बिना यह समझ में आवे, ऐसा नहीं है। बात तो सब ऐसी है। यहाँ कहीं किसी के पक्ष की बात नहीं है।

घोर संसार का मूल कहा है, लो! पुण्य और पाप के भाव, दया, दान का, व्रत का, भक्ति, तपस्या का भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना का भाव, दोनों भाव घोर संसार का मूल है। ऐ.. प्रकाशदासजी! है? इसमें लिखा है? आहा..हा..! राग है न! राग है, वह जहर है और जहर का फल संसार है। आत्मा का स्वभाव अमृतस्वरूप है। यहाँ तो यह पहले कहा है। अमृत आनन्द शान्ति अविचल स्थिरता, ऐसा आत्मा का स्वभाव है, उससे यह पुण्य और पाप विरुद्ध भाव है। जब स्वभाव मोक्ष का कारण है, तब पुण्य-पाप वह संसार का कारण है।

मुमुक्षु : परन्तु इसमें पुण्य को घोर किसलिए कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों घोर ही हैं। आत्मा की शान्ति नाश होकर उत्पन्न होते हैं। शान्त.. शान्त.. शान्त.. आहा..हा..! उस शीतलता का सरोबर। समझ में आया ? यह वे कुण्ड नहीं कहते ? क्या कहलाते हैं गरम पानी के ? कुण्ड-कुण्ड। गरम पानी के कुण्ड नहीं (होते) ? राजगृही और सर्वत्र है। यह आत्मा शीतल चैतन्य आनन्द का कुण्ड है। आहा..हा..! समझ में आया ? शीतल.. शीतल.. शीतल.. शीतल.. भगवान आत्मा का स्वभाव अत्यन्त शीतल-शान्त अकषायस्वभाव है। उससे पुण्य और पाप विरुद्ध कषायस्वभाव है। इसलिए अकषाय स्वभाव मुक्ति का कारण; कषायस्वभाव संसार का कारण है। सीधी बात है।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप में भेद डाले, वह घोर संसार का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घोर संसार आया न, देखो ! पुण्य-पाप में अन्तर माने, वह घोर मिथ्यादृष्टि है। संसार में भटकेगा। कहा न प्रवचनसार में (गाथा ७७ में) क्या हो ? लोगों को (पुण्य की) मिठास (छूटती नहीं)। अभी पाप में तो ठीक परन्तु वह पुण्य आवे, वहाँ उसे आहा..हा..! गले लगे।

मुमुक्षु : पुण्य स्वयं ही पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पाप ही कहा है। अघ कहकर दोनों को अघ कहकर कहा है।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप ही कहा। अनुभवीजन... योगसार (गाथा ७१ में कहा है) पाप को तो पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे। आहा..हा..! क्योंकि आत्मा तो अमृत का कुण्ड प्रभु है। अविकारी वीतराग अमृत का सागर है। उससे विरुद्ध भाव उत्पन्न हो, चाहे तो शुभ या अशुभ, (वह जहर है)। चार बोल लेंगे, इसमें विशिष्टता है। कर्ता और भोक्ता दो को धारकर रखा। शुभ-अशुभ परिणाम, वह घोर संसार और उनमें सुख-दु:ख की कल्पना होना, सुख-दु:ख की कल्पना होना, वह सब घोर संसार का मूल है। इसे शान्ति से विचारना चाहिए। यदि इसे सत्य चाहिए हो तो। आहा..हा..! भाई ! पुस्तक में है या नहीं ?

मुमुक्षु : पुस्तक में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका तो अर्थ होता है। यह कहीं घर के अर्थ नहीं होते। आहा..हा..!

मुमुक्षु : हमारी ओर दो चीज़ ही मिलती है, पुण्य और पाप।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य और पाप, बापू! दो कहाँ, वह तो संसार है। आहा..हा..! जिसे उनके फल में मिठास है न, उसे पुण्य-पाप की मिठास हटती नहीं। पैसा, इज्जत, धूल और सब। आहा..हा..!

मुमुक्षु : परन्तु पुण्य हो तो सब मिले, नहीं तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मिलता। धूल भी नहीं। ऐई.. शान्तिभाई! यह सब पुण्यशाली कहलाते हैं, सब पैसेवाले। कलकत्ता के। कहो, समझ में आया? जयन्तीभाई का लड़का है, वह दिलीप। वह मेरा मजाक उड़ावे। बारह वर्ष का है, बारह वर्ष का। वस्तु ऐसी है। लोगों को क्यों नहीं जँचता? ऐसा बोलता है। नवलचन्दभाई! जाधवजीभाई का पौत्र, जयन्तीभाई का पुत्र। वहाँ कलकत्ता में सब करते हैं न? भाई पहिचानते होंगे। जमुनादासभाई के नाम? क्या? लालचन्दभाई। उसे पहिचानते होंगे। उनके पुत्र का पुत्र है वहाँ। छोटा बारह वर्ष का दिलीप। जब यहाँ पुस्तक लेकर बैठे, तब मजाक करे। तुम्हारे वृद्धों-बूढ़ों का पानी उतार डाले ऐसा है। शान्तिभाई! बोले वीर्य से, हों! शरीर भरा हुआ है जरा। बारह वर्ष पूरे हुए, तेरहवाँ चलता है। यह क्यों जँचता नहीं? ऐसी वस्तु क्यों जँचती नहीं लोगों को? नवलचन्दभाई! यह उसके शब्द हैं, हों! सुनकर भी उसे... ऐसी बात सुनने को मिले, वह भाग्यशाली है, ऐसा बोलता था। ऐसा बोलता था। आवे तब यहाँ बैठे। अभी और उसे पढ़ने ले गये हैं न? पढ़ने ले गये.. उसके पिता जयन्तीभाई न! बेटा! चल.. चल.. पढ़ने। अब पढ़े, कहे। ऐसी पढ़ाई तो अनन्त बार पढ़ा। ....उसके पिता को ऐसा जवाब दिया था। जयन्तीभाई कहे कि चल भाई अब तू। अपने यहाँ अवकाश पूरा हो गया। अवकाश होता है न। अरे! पढ़े। यह पढ़ाई उसे कहा जाता है कि जो पढ़ाई अनन्त बार करके भूल गया, वह किया, वह पढ़ाई नहीं। पढ़ाई तो यह है कायम रहे, नित्य रहे, उसका नाम पढ़ाई। पण्डितजी! ऐसा एक लड़का आया है। उनका पौत्र है। आहा..हा..! उसमें आत्मा है न? वहाँ कहाँ छोटा-बड़ा शरीर है। वह तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। छोटी-बड़ी उम्र तो शरीर को है, आत्मा को कहाँ उम्र थी?

कहते हैं, अहो! भव्य जीव! आहा..हा..! ऐसा करके कितना सम्बोधन करते हैं, हों! हे भव्यजीव! भेदज्ञान की ऐसी दशा को पाकर... आहा..हा..! जिससे भिन्न पड़ा है, वह चीज़ क्या है? वह तो संसार का मूल स्वरूप दुःख है और सुख-दुःख, दो लिये। करने का और भोगने का। शुभ-अशुभपरिणाम करना और शुभ-अशुभपरिणाम में हर्ष-शोक का भोगना घोर संसार का मूल है। यह पैसा-वैसा मिले और खाने-पीने में मजा आवे, वह राग घोर संसार का मूल है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अब करना क्या, यह तो बात करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करने की बात तो चलती है। आत्मा अन्दर ऐसा है, उसमें एकाग्र होना, वह करना है। बाकी सब जहर का प्याला पीते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा..!

मुमुक्षु : अमृत जैसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी अमृत नहीं है। यह तो अपने आ गया, नहीं? शराब पीवे, उसे श्रीखण्ड का स्वाद नहीं लगता। उसे श्रीखण्ड का स्वाद दूध जैसा लगता है। शराब के नशे में अच्छा श्रीखण्ड दो तो उसे स्वाद नहीं लगता। उसे नशा है, इसलिए (स्वाद नहीं लगता)। मानो दूध पीता हूँ, ऐसा लगता है। इसी प्रकार यह अमृत जैसा लगे, वह मिथ्यात्व का नशा है इसलिए।

मुमुक्षु : .....पुण्य की बात आवे, तब लकड़ियाँ लेकर बैठे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : .....यह क्या कहते हैं? यह मुनि क्या कहते हैं? पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि-सन्त हैं। आत्मध्यानी, ज्ञानी, जिनके मुख में से आगम झरता है—ऐसा आगे लिखा है।

मुमुक्षु : यह मूल भूल निकालने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल भूल निकालने की बात है। अभी तेरी समझ का ठिकाना नहीं, अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं और तुझे धर्म हो जाये! (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा में उतरे तो फिर जीने की व्यवस्था क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जीवे? वह तो उसके कारण से जियेगा।

मुमुक्षु : रोटियों के बिना किस प्रकार जियेगा?

मुमुक्षु : वे रोटियाँ उनके कारण से मिलेंगी।

मुमुक्षु : आज कहाँ मिलती थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके कारण आयेगी। आना होगा तो आयेगी, नहीं आना होगा तो नहीं आयेगी। अपने काठियावाड़ में नहीं कहा जाता? दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। तुम्हारे क्या कहते हैं? दाने-दाने पर मोहर लगी है। इसका अर्थ कि जो दाने आनेवाले हैं, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले हैं, वे नहीं आयेंगे। तेरे कारण नहीं है। कौन निभे? और किसे निभाना है? आहा..हा..! भगवान तो अपने स्वरूप से निभता है। कहा नहीं? त्रिकाल अटूट श्रद्धा के स्वभाव से त्रिकाल वह टिक रहा है। आहा..हा..! कायर का कलेजा काँपे, ऐसा है।

कहते हैं, **सुकृत या दुष्कृत को, सुख या दुःख को...** सुख की कल्पना होती है। यह पैसा, स्त्री, लड़के का लड़का अच्छा, उसमें ऐ! पोपटभाई! तुम्हारे छह लड़के। ऐसे बैठे हों। छह बहुएँ और पोते, घर के और यह कुर्सी डालकर बाग में बैठे हों। देख लो वह तो तुम्हारे। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसे कहीं लड़कों के साथ रोज नहीं बैठते।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी दिन फुर्सत में हों, तब तो बैठते हैं न! किसी दिन। अब यहाँ मकान बनाया है तो इनके पिता यहीं रहेंगे, तब तीन-तीन किसी समय होंगे तो इकट्ठे बैठेंगे या नहीं?

मुमुक्षु : वे तो नम्बर से आवें।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले नम्बर से। परन्तु तीन-तीन तो... ऐसा कहते हैं। उसकी बात कहाँ है? यह तो सबकी बात है न? ऐई! चिमनभाई! यह तो एक सामने (बैठे हुए) व्यक्ति की बात होती है। आहा..हा..! क्या हो?

जगत लुटाया है न, और वापस लुटकर प्रसन्न होकर है। भार कम हुआ। चोर आकर ले गया, भार कम हुआ। आहा..हा..! अरे भगवान! तेरा माल अन्दर अमृत और शान्ति का सागर भरा है, भाई! तुझे तेरी कीमत नहीं है, तुझे तेरी खबर नहीं है, तुझे तेरा भान नहीं है और दूसरे का भान करके बैठा है। ऐसा है और वैसा है। देव का लड़का उतरा मानो संसार की बातें करने बैठा। यहाँ मूर्ख। नवलचन्दभाई! भाई! यहाँ तो यह है। यहाँ कोई हमारे पास मक्खन-बक्खन नहीं है।

मुमुक्षु : कुछ खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ खबर नहीं। आहा..हा..! भाषा तो देखो! इतना अन्दर डाला है, हों! इसलिए ब्रह्मोपदेश कहा है न।

इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,.... आहा..हा..! अनन्त चतुष्टय का नाथ, ऐसा भगवान है। वह राग से, पर से और पर्याय से भिन्न है, ऐसे **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव...** जिसे अल्प काल में अब मोक्ष निकट है, ऐसे भव्यजीव, सुकृत-दुष्कृत के भाव (जो) संसार के मूल हैं और सुख-दुःख का भाव, वह घोर संसार का मूल है, **अत्यन्त परिहरो।** भाषा है। **अत्यन्त परिहरो।** मात्र परिहरो, ऐसा नहीं। कहो, भीखाभाई! क्या करना इसमें?

मुमुक्षु : मुझे आपकी बात ग्रहण करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण करना है। इसे जवाब देना आता है। यह तलेटी है न? क्या कहा जाता है? तलाटी। तलेटी कहा यहाँ। आहा..हा..!

अत्यन्त परिहरो। यहाँ धर्मी जीव को, भव्य जीव को कहते हैं, यदि तुझे सुखी होना हो, धर्म करना हो, मुक्ति का कारण सेवन करना हो तो भगवान आत्मा में एकाकार हो और सुख-दुःख को, शुभ-अशुभपरिणाम को छोड़ो। दृष्टि में से छोड़ दे। यह मेरा स्वरूप ही नहीं। आहा..हा..! यह सब तो अजर-अमर होने का प्याला है। चौरासी में मर गया, अरबोंपति अनन्त बार हुआ। अरबोंपति अनन्त बार और सौ बार माँगे और ग्रास मिले, ऐसा भिखारी (अनन्त बार हुआ।) उसमें नयी चीज़ क्या है? ये सब रंक-भिखारी हैं, दुःखी हैं। आत्मा की बादशाही की जिन्हें खबर नहीं है, वे सब भिखारी-रंक हैं। ऐई! कहाँ गये? ऐ... मलूपचन्दभाई! क्या तुम्हारा अभी आया नहीं? कोई कहता था, थोड़े दिन में आनेवाला है। हैरान-हैरान होता है जहाँ-तहाँ, लड़की के विवाह के लिये खोज करता है। दो करोड़ रुपये हैं। एक लड़की है। अब डालना कहाँ? तो खोजा करता है उसका लड़का।

मुमुक्षु : बाप है तो घूमना ही पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान (होता है)। दुःख, सब दुःख के (पंथ हैं)। आहा..हा..! कुँवरजी भाई को कहा था, दृष्टान्त नहीं दिया था? कुँवरजीभाई कंदोईका चूड़ावाला, दृष्टान्त आया... भुजिया या गाठिया बनाते थे। अपने जैन थे कंदोई चूड़ा में कुँवरजीभाई थे। ऐसे

करते थे, उसमें ऊपर से सर्प निकला, कढ़ाई में गिरा, आधा पका कढ़ाई और आधा रहा बाहर। तेल में से झारी से ऐसे निकाला चूल्हे में घुस गया। आधा जला, भुजिया बनाते होंगे और वह ऊपर से सर्प ऐसे निकला होगा। भाप गर्म लगी तो आधा कढ़ाई में गिरा। कुँवरजीभाई जैन, हों! बेचारे। त्रास, त्रास। ऐसा करके बाहर निकाला। आधा अन्दर और आधा बाहर। बाहर निकाला, ऐसा भान न हो, इसलिए उसे ऐसे की बचने जाये तो चूल्हे में गया। सुलगती आग में जला और सुलगा। यह जले हुए का बचाव करने गया, वहाँ जलने में (आग में) घुस गया। इसी प्रकार अज्ञानी अपने सुख के लिये (यत्न) करने जाता है, वहाँ अग्नि को-मिथ्यात्व को, राग को सेकता है। गहरे-गहरे आगे घुस जाता है। समझ में आया? यह तो बना हुआ है, हों! उनके लड़के दो दिन पहले आये थे।

मुमुक्षु : वे तो कुँवरजी स्वयं भी यहाँ आते थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ आते और पैसा निकालकर यहाँ रखे थे। शुभ खाते में यहाँ दे गये थे। आहा..हा..! उस समय कोई त्रास था। वह आधा जला पड़ा और जहाँ निकाला वहाँ धगधगाती अग्नि में घुस गया। इसी प्रकार अनादि का अज्ञानी मिथ्यात्व से विपरीत श्रद्धा से सुलग रहा है। समझ में आया? उसे जहाँ कोई कहे कि भाई! इसमें से निकल। गहरे-गहरे घुसता है। गहराई। आत्मा में गहरे जाना है, उसके बदले राग और मिथ्यात्व में गहरे जाता है। आहा..हा..! राग, वह मेरी चीज़ है और राग मेरा स्वरूप है, राग से मुझे लाभ होगा, (ऐसी मान्यतावाला)। मिथ्यात्व में, घोर संसार में गहरे-गहरे पड़ता है। समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : .....परन्तु पैसे के बिना नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे के बिना ही चलता है। अनादि से मर गया। पररहित तो रहा है। प्रत्येक तत्त्व स्व से रहा और पर से नहीं। पर से नहीं, तब तो रहा है। कहीं न्याय को समझे नहीं तो क्या करे? यह अंगुली है, लो! यह अंगुली, अंगुली से रही है। इस अंगुली से रही है? इस अंगुली का तो इसमें अभाव है। अभाव के कारण रही है? इसी प्रकार आत्मा आत्मा से रहा है; परवस्तु के अभाव से रहा है। आहा..हा..! परन्तु मिथ्यात्व की मान्यता कि मुझे पर के बिना नहीं चलता। इस मान्यता के बिना इसने नहीं चलाया है। समझ में आया?

अत्यन्त परिहरो। पद्मप्रभमलधारिदेव की भाषा कठिन लगे, हों! इसलिए वह रत्नचन्दजी ऐसा ही कहें... आहा..हा..! **उससे ऊपर (अर्थात्, उसे पार कर लेने पर),...** देखो, यह शुभ-अशुभभाव और सुख-दुःख की कल्पना को उल्लंघ जाये और अन्दर जाये, ऐसा कहते हैं। **जीव समग्र (परिपूर्ण) शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** वह पुण्य-पाप के विकल्प और सुख-दुःख की कल्पना, उसे परिहरकर - छोड़कर अन्तर भगवान आत्मा के अन्तर में एकाग्र होता है, वह शाश्वत् परम सुख को पाता है - वह मुक्ति को पाता है, यह धर्म है। गजब बात, भाई! कायर का तो कलेजा काँप उठे। हाय.. हाय..! यह तो हमने कहते सुना था कि सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं। जो सुना, वह प्रत्यक्ष आया। आहा..हा..! शास्त्र कहता है या सोनगढ़वाले कहते हैं यह? **शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** आहा..हा..!

समग्र... अर्थात् **(परिपूर्ण) शाश्वत...** अर्थात् अनन्त आनन्द। जो कोई पुण्य-पाप और सुख-दुःख की कल्पना छोड़कर अन्तरस्वभाव भगवान आत्मा का आश्रय लेकर और अनुभव करता है, वह **शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** उसे मोक्ष का मार्ग भी कहा और उससे मोक्ष मिलता है, ऐसी दोनों बातें की हैं। समझ में आया? पहले अभी श्रद्धा-रुचि में भी ठिकाना न हो, उसे अन्दर चारित्र कहाँ से आवे और वीतरागता कहाँ से आवे और मोक्ष कहाँ से हो? आहा..हा..! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)